देते हैं। जिसके कारण लोगों ने नैतिकता एवं चारित्रिक निम्नता दिखाई देती है। भ्रष्टाचार आज के समय में आर्थिक विकास की सबसे बड़ी बाधा है। भ्रष्टाचार के द्वारा गलत मार्ग अपना कर अधिक से अधिक मुनाफा व धन कमाया जाता है। भ्रष्टाचार के अनेक रूप है यथा- मुनाफाखोरी, पद का दुरूपयोग, घुसखोरी, मिलावट, कर्तव्यपरायणता में आलस्य, सामाजिक दायित्व के विरूद्ध आचरण आदि। देश के सरकारी कार्यालयों, पुलिस विभाग, न्यायालय, प्रशासन, राजनीति और शिक्षा आदि के क्षेत्रों में भ्रष्टाचार ने अपने पैर पसारे हैं।

'शब्दों का खाकरोब' में 'मुकदमा' कहानी का मुख्य पात्र पूरन है जो कि अनपढ़ था। वे कृषि एवं मजदूरी करके अपना परिवार चलाता था। उसका एक चचेरा भाई था मूलु जो कि शहर में नौकरी करता था। ज़मीन बँटवारे को लेकर मूलू ने मुकदमा तहसील कार्यालय में दायर कर दी थी उस समय पुलिस ने आकर जो कार्य किया उसका वर्णन निम्न में है -

"ज़मीन भी सरकार ने कुर्क कर दी। पुलिस का सिपाही आया और गहूँ की सुपुर्दगी मुच्छल बाँकेलाल को दे गया। बाँकेलाल निहायत पियक्कड़ है और यह तयशुदा था कि वह सारी फसल बेचकर थाने में कुछ हिस्सा पहुँचाकर बाकी हड़प कर जाएगा।" इससे स्पष्ट विदित है कि पुलिस आकर दोनों के कार्य को आसान करने की बजाय जीवन शैली को और अधिक क्लिष्ट बना गई। पुलिस द्वारा फसल को जोर जबरदस्ती बेचना एवं लूट कर ले जाना, उनके पद के दुरूपयोग के साथ-साथ भ्रष्टाचार का एक अन्य उदाहरण है।

जब पूरन की ज़मीन को कुर्क कर दिया गया तो वह चिन्तित हो गया। घटना को सुलझाने के लिए तथा अपने अधिकार को पाने के लिए रिश्वत द्वारा जेब गरम करने का विचार कहानी में वर्णित है-

"पूरन ने हाथ जोड़ लिए बोला" माई-बाप, ज़मीन हमारी। गरीब आदमी है, आप ही मालिक है।" थानेदार ने थोड़ी दया दिखाकर दोनों पक्षों को थाने बुलाकर पंचायत की दोनों तरफ के कागज देखे। दोनों तरफ से दाम वसूली की।" गरीब कृषक पूरन का नाम पर खेत संबंधि मुकदमा होने से इन्स्पेक्टर धमकाने लगा। पूरन हाथ जोड़कर सच्चाई बताने की कोशिश किया। थानेदार ने बात को सुलझाने के लिए पूरन और मुकदमा करने वाला चचेरा भाई मूलू को थाने पे बुलाया था ।इससे प्रतीत होता है कि मुनाफाखोरी करना भी भ्रष्टाचार है।

****

संदर्भ:-

1. राजू शर्मा- हलफनामे, पृ. – 103.
2. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब (मुकदमा), पृ.-13.
3. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब (मुकदमा), पृ.-13.
4. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब (मुकदमा), पृ.-13.
5. राजू शर्मा- शब्दों का खाकरोब (मुकदमा), पृ.-13.

समकालीन स्त्री के बदलते मायने

डॉ. सीमा चन्द्रन
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी व तुलनात्मक साहित्य विभाग,
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
पेरिया पोस्ट, तेजस्विनी हिल्स, कासरगोड- 67132
ई-मेल-seemachandran@cukerala.ac.in

प्रस्तावना: समकालीन स्त्री परंपरा के घेरे में न होकर भी धकेल दी जाती है। समकालीन स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी रंगीन चुभते तानों या व्याख्या के परे अपनी पहचान पा नहीं पाती। पारिवारिक ज़िम्मेदारी वर्तमान समय में भी स्त्री के ही कंधों पर है। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ बहु-टास्किंग का कार्य स्त्री को ही करना है। यदि कहीं पर भी कोई चूक हो गई तो नाकाबिल हालात को नहीं स्त्री को ही समझा जाता है। इस बीच यही दोनों कार्य शारीरिक बल से संपूर्ण पुरुष को भी करना हो तो उन्हें भी समान दिक्कत होगी। शायद स्त्री से ज़्यादा। परंतु स्त्री को कमज़ोर की श्रेणी में रखकर कई कार्य थोपे जाते रहे हैं। समकालीन लेखन किस हद तक बदलाव ला सकती है, इसे जानना होगा। बदलाव हमेशा मानसिकता बदलने से ही संभव है। ताकतवर को कमज़ोर कहने पर उसे कोई फर्क़ नहीं पड़ता परंतु सदियों से दबाए हुए को कमज़ोर कहने से काफी फ़रक पड़ता है।

बीज शब्द: समकालीन, स्त्री, पुरुष, मानसिकता, साहित्य में स्त्री, स्त्री लेखिकाएँ, शोषण, कारण, बदलाव की माँग।

सदियों से साहित्य और समाज की परंपरा स्त्री के केन्द्र में दैहिक संरचना रखती आई है। इसी कारण उसे कोमल, बलिदानी, करुण हृदय और ममता के अंतर्गत वर्गीकृत किया है। भारतीय संस्कृति जहाँ स्त्री को महान बनाती है, वहीं स्त्री विमर्श स्त्री को समान बनाने प्रयासरत है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत, हिन्दू धर्म में स्त्री को देवी का स्थान प्राप्त है। ऋगवैदिक काल में स्त्रियाँ विदुषी और दार्शनिक थीं। वे ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन हेतु स्वतंत्र थीं। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को आश्रमों में शिक्षा व यज्ञों में भाग लेने का अधिकार था। धर्म और दर्शन में भी वह निपुण थी। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि कर्त्तव्य निर्वाह में स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते थे। उपनिषद काल तक आते-आते स्त्रियाँ दर्शन के क्षेत्र में अग्रणी रहीं। पुराणों में स्त्रियों को भी, पुरुषों के समान ही शिक्षा का पूर्ण अधिकार था।

हिन्दी व्याकरण में आए शब्द के अंत में 'ई' स्त्रीलिंगवाची शब्द- स्त्री, प्रकृति, शक्ति और बुद्धि, चारों ही स्त्रियों को व्याख्यायित करने में अद्भुत सिद्ध हुए हैं। अर्थात् स्त्री करुणा की प्रतिमूर्त्ति, प्रकृति जैसी अभेद प्रवृत्ति, निर्माण की शक्ति और विवेकशील बुद्धि का अर्द्धभाग है, जिसके बगैर जीवन की कल्पना असंभव है।

स्त्री विमर्श, दो शब्दों स्त्री और विमर्श से बना है। विमर्श का अर्थ है –'विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क'[1]. (हिन्दी शब्दकोश में) वहीं रोहिणी अग्रवाल इसे 'जीवन्त बहस'[2] मानती हैं। उनका मानना है कि स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परंपरा एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत प्रक्रिया । अतः स्त्री विमर्श से तात्पर्य- स्त्री विमर्श एक विचारधारा है, जिसे स्त्री के किसी एक दृष्टिकोण या मानसिकता का अध्ययन न कर समग्र विचारों का अध्ययन करना है। यह एक माध्यम है, जिसमें स्त्री के हितों पर विचार कर अपनी बात को रखा जाता है। इस तरह स्त्री विमर्श एक नवीन विचारधारा को समाज के समक्ष प्रस्तुत

करता है जो स्त्री के हितों को ध्यान में रखकर उसे समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार और अपने अस्तित्व को समाज के समक्ष उजागर करने की प्रेरणा देता है।स्त्री विमर्श में एहम् मुद्दा स्त्री अस्मिता का है, जिसमें स्त्री को पुरुष के समकक्ष खड़ा करने की बात रखी गई है। स्त्री अस्मिता पर महादेवी वर्मा अपनी रचना, 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में कहती हैं, "युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े-बड़े साम्राज्य बह गये, संस्कृतियाँ लुप्त हो गईं, जातियाँ मिट गईं, संसार में अनेक असम्भव परिवर्तन सम्भव हो गए, परन्तु स्त्रियों के ललाट में विधइ की वज्रलेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी।"[3].

शिक्षा ने स्त्री को संस्कारों के कलेवर पर ढ़ाल दिया। उसे एक आदर्श छवि मिली, पर पुरुष उसका प्रतिद्वन्द्वी बन गया। इस होड़ में समाज सँवरने की जगह बिखरने लगा । जिस अस्तित्व के लिए वह जंग लड़ रही थी, उसी अस्तित्व पर कुल्टा, कलंकिनी, चरित्रहीन कहकर उँगली उठाई गई। उसमें भय पैदा किया गया कि, यदि अस्तित्व के लिए आवाज़ उठाई तो बलात्कार, दहेज-हत्या, कन्या-भ्रूण हत्या, पीड़ा, शोषण, घरेलू-हिंसा, बाल-विवाह, सती-प्रथा, तेज़ाब में झुलसाकर मार दी जाएगी। स्त्री मुक्ति का तात्पर्य पुरुष को दरकिनार कर अपना वर्चस्व पाना नहीं है, बल्कि उन परंपराओं से मुक्ति है जो मात्र स्त्री के लिए गढ़ी गई है। मृणाल पाण्डे स्त्री मुक्ति के प्रश्न के यथार्थ को यूँ प्रकट करती हैं, "नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है। जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है।"[4]. स्पष्ट है कि स्त्री केवल पुरुष की संकीर्ण विचारधारा से मुक्ति चाहती है।स्त्री चेतना को स्वतंत्रता के पश्चात् से ही पहचाना जाने लगा था। स्त्री सशक्तिकरण के कई प्रयास किए गए है। स्त्री चेतना का अर्थ ही अधिकारों के प्रति जागरूक होने की शक्ति से है। डॉ. के. एम. मालती 'स्त्री विमर्श-भारतीय परिप्रेक्ष्य' नामक किताब में स्पष्ट कहती हैं, - "अपने स्वत्व से जुड़ी तमाम समस्याओं के प्रति आज की स्त्री सचेत है। स्त्री से जुड़े बिंदुओं की बारीकी के साथ तीव्र पहचान स्त्री ही कर सकती है। स्त्री विमर्श का मतलब स्त्री पुरुष की स्वार्थ की दौड़ नहीं है, स्त्री की स्वयं की आलोचना भी है।"[5]. स्त्री जागरूक होकर, लेखन क्षेत्र के माध्यम से अपनी अस्मिता के लिए कई स्त्री आगे आई। परम्परागत मूल्यों औक पुरुष प्रधान समाज की कुत्सित मान्यताओं के खिलाफ संघर्ष करने लगीं। मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं, "नारीवाद ही स्त्री विमर्श है। नारी की यथार्थ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है। "[6].यहाँ मात्र उद्देश्य समकक्षता का है। आगे बढ़ने की होड़ कतई नहीं है। स्त्रीवाद का अर्थ है ऐसा विश्वास या सिद्धांत जो स्त्रियों को समान अधिकार व अवसर प्राप्त कराएँ।

महादेवी वर्मा स्त्री की वास्तविक लड़ाई की ओर इशारा करती हैं और बताती हैं कि यदि स्त्री केवल स्त्री , पुरुष से तर्क करने में लगी रहे, ज़रा भी समझौता न करें तो तो व्यवस्था निश्चल हो जाएगा। आज की शिक्षित नारी इस बेड़े को उठा सकती है। शिक्षित नारी के संबंध में महादेवी वर्मा कहती है, "...भविष्य में भारतीय समाज की क्या रूपरेखा हो? उसमें नारी की कैसी स्थिति हो? उसके अधिकारों की क्या सीमा हो? आदि समस्याओं का समाधान आज की जाग्रत और शिक्षित नारी पर निर्भर है... वह विरोध को ही चरम् लक्ष्य मान लें और पुरुष से समझौते के प्रश्न को ही पराजय का पर्याय समझ लें तो जीवन की व्यवस्था अनिश्चित और विकास का क्रम शिथिल होता जाएगा ।"[7]. वहीं रामधारी सिंह दिनकर का कहना है कि पुरुष, अपने झठे पौरुष को स्थापित करने के लिए स्त्री पर हावी होता है। उसका पुरुषार्थ मात्र स्त्री पर अधिकार कर उसे परतंत्र बनाने तक निर्भर है।"पुरुष अपने अहम् के वशीभूत ही स्त्री के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहा है, और आज तक यदि पुरुष नारी को समझ लेगा तो समाज का सारी विषमताओं का स्वतः ही निराकरण हो जाएगा, आवश्यकता उसे समझने और महसूस करने की है।"[8] मैत्रेयी पुष्पा जी मानती हैं कि स्त्री के यथार्थ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है। प्रभा खेतान के शब्दों में, "नारीवाद न मार्क्सवाद है और न पूँजीवाद। स्त्री हर जगह है, हर वाद में है, फैलाव में है, मगर संस्कृति के विस्तृत फलक पर आज भी वह वस्तुकरण की शिकार है, वस्तुकरण की इस पारंपरिक प्रक्रिया को पुरुष दृष्टि से नहीं बल्कि स्त्री-दृष्टि से देखने और समझने की ज़रूरत है।"[9]. प्रभा खेतान स्त्री की वर्तमान स्थिति का ज़िम्मेदार स्वयं स्त्री को मानती हैं। भारतीय स्त्री चिंतक स्त्री और पुरुष के बीच की गहराई को दूर करने का प्रयास कर रहे हैं। स्त्री को अब अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। देह को त्याग कर मस्तिष्क से बनानी होगी अपनी पहचान। क्योंकि देह ने स्त्री को हमेशा वस्तुकरण की प्रताड़ना के साथ प्रदर्शनी और भोग्या ही बनाया है। बौद्ध थेरी गाथाओं में 522 गाथाएँ हैं, जिसमें बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा उनके अनुभवों और मनःस्थिति को अभिव्यक्त किया गया हैं।

विज्ञान ने सिद्ध किया है कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी भी अर्थ में कम नहीं हैं। बल्कि उन्हें मातृत्त्व का विशेषाधिकार प्राप्त है। समाज ने पक्षपातपूर्ण अनेक अधिकारों से वंचित कर रखा है। वैदिक काल में उसकी स्थिति सम्मानजनक थी, परंतु उत्तर वैदिक काल में उसका पतन होना आरंभ हो गया। समकालीन दौर में स्त्री अपनी अस्मिता की तलाश समाज, साहित्य और संस्कृति के भीतर लगातार कर रही हैं। एक ओर उसे नारी तुम केवल श्रद्धा हो कहकर उसे आध्यात्मक में माया, बाधिनी , सर्पिणी आदि विशेषण दिए गए हैं। इन्हीं रूढ़ियों के बीच सामान्य होने को व्याकुल उसकी छटपटाहट और संघर्ष उसे विमर्श के केन्द्र में खड़ा करता है। पितृसत्तात्मक मूल्य स्त्री को दोयम दर्जे का मानते हुए उसके मानवीय मूल्य एवं अधिकारों का हनन करते हैं। स्त्री विमर्श इन्हीं पितृसत्तावादी मूल्यों को तोड़कर समाज में न्याय, समता और स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि तैयार केरना चाहती है।

स्त्री विमर्श का तात्पर्य पुरुष का विरोध नहींस बल्कि पितृसत्तावीद मानसिकता का विरोध है, जिसने स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित ही नहीं रखा बल्कि उसे संपत्ति समझा। सुधा सिंह अपनी किताब 'ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ' में लिखती हैं, "स्त्री अस्मिता का प्रमुख आधार है स्त्री को पुरुष संदर्भ से बाहर लाना और स्त्री संदर्भ में रखकर देखना।.....स्त्री और पुरुष दो अलग अस्मिताएँ हैं। भाषा और विचार के जन्म से पहले स्त्री और पुरुष का जन्म हुआ। स्त्री और पुरुष का प्रकृति से संस्कृति में रूपांतरण वैसे ही है, जैसे लड़का धीरे-धीरे मर्द और लड़की धीरे-धीरे औरत बनती है। इसी क्रम में दोनों की भूमिकाएँ तय होती हैं। इस संदर्भ में लिंग के संबंध और पहचान का जन्म होता है। भाषा के ज़रिये लैंगिक चिंतन अभिव्यक्त होते हैं।"[10] प्रस्तुत वक्तव्य से ज्ञात होता है कि सुधा सिंह स्त्री विमर्श का आधार स्त्री अस्मिता को मानती हैं। स्त्री का निर्माण मात्र शारीरिक संरचना के कारण ही नहीं बल्कि समाज के परिवेश, पारिवारिक परिस्थितियाँ, संस्कार , मूल्य आदि सभी मिलकर नारी मानसिकता का निर्माण करते हैं। फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोउवार ने लिखा है "स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है। "[11].

सर्वप्रथम अमरीका के मैसाच्यूसेट राज्य में 1611 ई. में वोट देने के अधिकार की माँग से स्त्रियों की आज़ादी की शुरूआत हुई। इस घोर संघर्ष के दौरान स्त्री विरोधी लोगों ने इस प्रयास को 1980 विफल कर यह अधिकार वापस लिवा लिया। परंतु इसका प्रयास पूरे विश्व पर पड़ा। क्योंकि पूरे विश्व में तब दो तरह के लोग थे। एक स्त्री विरोधी और दूसरे

शिक्षा ज़रूरी है। फ्रांस के राजनीतित्र कांडसैंड ने स्त्रियों को शिक्षा देने नौकरी देने तथा राजनीति में भाग लेने की बात कही थी, तो उसका प्रभाव अन्य देशों पर भी दिखाई पड़ा। अतः सन् 1840 में अमरीका ने दक्रीशिया के नेतृत्व में समान अधिकार संघर्ष की स्थापना की और श्वेत महिलाओं की तरह अश्वेत महिलाओं के समान अधिकार की माँग की। बीसवीं सदी के मध्य में सीमोन द बोउवार ने स्त्री मुक्ति की आवाज़ अपनी पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' स्त्री मुक्ति की आवाज़ लेकर सामने आई। इसका हिन्दी रूपांतर 'स्त्री उपेक्षिता' प्रभा खेतान ने किया। इस पुस्तक का प्रभाव शिक्षित, चेतनायुक्त स्त्रियों पर पड़ा। सीमोन द बोउवार ने विभिन्न जाति के स्त्रियों के संबंध में कहा है, "स्त्री अधीनस्थ जाति है। जाति का अर्थ है कि कोई उस जाति में उत्पन्न हुआ है और वह उससे बाहर नहीं जा सकता है। लेकिन आप औरत हैं, तो कभी पुरुष नहीं न बन सकती हैं। औरत विशुद्ध रूप से एक जाति है, वर्ग नहीं। आर्थिक और सामजिक दृष्टि से औरतों के साथ होने वाला व्यवहार उन्हें एक अधीनस्थ जाति के रूप में निर्मित करता है।"[12] प्रस्तुत गद्यांश से ज्ञात होता है कि पूरे विश्व में विभिन्न तबके की स्त्रियाँ हैं। जिनमें निम्न, मध्य, उच्च आदि खेमें आते हैं। इनकी आवश्यकताएँ भी भिन्न होतीं हैं। सभी स्त्रियों को पहले शिक्षित होना होगा। फिर मिलकर अपने अधिकारों को पाना होगा।

भारत के मुक्ति आंदोलन के संदर्भ में कवयित्री अनामिका जी लिखती हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी में पंडिता रमाबाई ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने स्त्री शिक्षा और स्वावलम्बन की मुहिम का मार्ग प्रशस्त किया। कई ऐसी रूढ़ियाँ तोड़ते हुए जो स्त्री जीवन खासकर विधवाओं और अन्य एकाकी स्त्रियों का अंतरंग जीवन क्षत-विक्षत रखती थी। सन् 1884 ई. में सीमन्तनी उपदेश की अज्ञात हिन्दी लेखिका ने हिंद स्त्रियों की लड़ाई लड़ी। उन्हें अपना नाम छिपाना पड़ा था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारत के सभी वर्णों की स्त्रियों की मुक्ति की कानूनी लड़ाई हिन्द कोड बिल देकर लड़ी। इसमें समान अधिकार चाहा गया है। पिता की संपत्ति में पुत्री को भी समान अधिकार की माँग की गई है। तत्कालीन संसद ने यह बिल प्राप्त नहीं होने दिया। इस निराशा में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कानून मंत्री पद से 10 अक्टूबर सन् 1951 को इस्तीफा दे दिया। यह बिल बाद में टुकड़ों में प्राप्त हुआ। सही मायने में आज भी स्त्रियों को अपना वाजिब हक़ नहीं मिलता है। मन्नू भंडारी मानती है कि हर स्त्री की अपनी अलग सम्स्याएँ हैं, इन्हें सिर्फ एक खाँचे में रखकर नहीं देखा जा सकता। वे लिखती हैं, "कौन सी भारतीय स्त्री ? किस भारतीय स्त्री की बात करते हैं हम वह जो उत्तरप्रदेश, राजस्थान व बिहार के गाँवों में रहती है। एक औरत जो गाँव में रहती है और जो दक्षिण दिल्ली में रहती है, क्या इन सबको एक ही गज से नापा जा सकता है ? इनके लिये क्या एक विमर्श तैयार किया जा सकता है। कि यह होना चाहिए या नहीं जब हमारे देश में इतनी विविधताएँ हैं, तो आप किस स्त्री के विमर्श की बात करते हैं सबकी अपनी अलग-अलग समस्याएँ हैं।"[13]

सीमा ओझा अपने समय की किन्हीं तेजस्वी स्त्रियों का ज़िक्र करते हुए कहती हैं, "नारी विमर्श पर चर्चा करते समय जिस तेजस्वी व्यक्तित्व का नाम ध्यान आता है वह है-मीरा, जिन्होंने मध्यकाल में सामंती समाज पितृसत्तात्मक समाज के विद्रोह का झंडा बुलंद किया और अपने समय को झकझोर कर रख दिया। मीरा ने समाज द्वारा "

उपर्युक्त समकालीन लेखिकाओं के कथन व उक्ति प्रामाणित करती है कि महिलाएँ वास्तव में सशक्त हैं, भले ही बल से नहीं मगर इरादों और आत्मविश्वास से। उनकी हिम्मत को खत्म करना आसान नहीं है। वे गिर कर भी उठ खड़ी हो लेतीं हैं। यही कारण है कि आत्मा की शक्ति से और तटस्थ इरादों में स्त्री से जीतना मुश्किल है। पितृसत्ता यह जानती है कि स्त्री यदि स्वयं रक्षिता हो गई तो उसे किसी की ज़रूरत नहीं। वास्तव में पहचान की ज़रूरत स्त्री को नहीं पुरुष को है। तभी परिवार में पहचान और आदर प्राप्त होगा। बगैर किसी पहचान के भी स्त्री माँ है। तभी सिंदूर, मंगलसूत्र व रीति-रिवाज़ों को ज़िन्दा स्त्रियों के माध्यम से रखा गया। जिसे बेड़ियाँ बना दी गई। अतः कह सकते हैं कि यदि जिस घर या देश में स्त्री का सम्मान होगा, वह घर या देश समृद्ध और काफी हद तक क्राइम मुक्त होगी।

****

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोश, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, 2015, पृ. 751
2. रोहिणी अग्रवाल, साहित्य की ज़मीन और स्त्री मन के उच्छवास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 11
3. महादेवी वर्मा- श्रृंखला की कड़ियाँ- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001, पृ. 22
4. मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.
5. डॉ. के. एम. मालती- स्त्री विमर्श-भारतीय परिप्रेक्ष्य - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर 2012, पृ.84
6. हंस पत्रिका, संपादक राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर, 1996 पृ. 75
7. महादेवी वर्मा- आधुनिक नारी उसकी स्थिति पर एक दृष्टि-श्रृंखला की कड़ियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ.45
8. मधुमति पत्रिका, सं-रोहित गुप्ता, दिनकर की नारी विषयक अवधारणाएँ-डॉ. सुनिता निमावत (आलेख), राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, फरवरी-मार्च, 2016-पृ.-45.
9. प्रभा खेतान, हंस पत्रिका, संपादक राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर 1996 पृ. 76
10. सुधा सिंह – ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, शिल्पी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008
11. सीमोन द बोउवार- स्त्री उपेक्षिता (अनुवाद प्रभा खेतान) – हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रकाशन, संस्करण, 1992
12. सीमोन द बोउवार- स्त्री उपेक्षिता (अनुवाद प्रभा खेतान) – हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रकाशन, संस्करण, 1992
13. मन्नू भंडारी- आजकल- नई दिल्ली, मार्च 2008 पृ. 15